International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: **3049-2017**
IJMH 2026; 3(1): 214-217
© 2026 IJMH
www.themultijournal.com
Received: 05-02-2026
Accepted: 25-02-2026
Publish : 27-02-2026

आदेश नौडियाल
शोध-छात्र संस्कृत संस्थान,
JNU

Correspondence:
आदेश नौडियाल
शोध-छात्र संस्कृत संस्थान,
JNU

अवधूत गीता का सम्प्रत्यय, दार्शनिक महत्त्व एवं आधुनिक प्रासंगिकता।

आदेश नौडियाल

सारांश (Abstract)

यह शोध पत्र भगवान दत्तात्रेय द्वारा रचित 'अवधूत गीता' में प्रतिपादित अद्वैत सिद्धान्तों का परीक्षण करता है। इसमें चर्चा की गई है कि कैसे यह ग्रन्थ (भागवत-महापुराण) ज्ञान मार्ग के माध्यम से द्वैत (Duality) का खण्डन करता है और आत्मा की नित्य मुक्त अवस्था का वर्णन करता है। यह शोध-पत्र आधुनिक सन्दर्भ में समत्व (Equanimity) की प्रासंगिकता को भी रेखांकित करता है।

प्रस्तावना (Introduction)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि= भगवान् ने उद्धव के आत्मज्ञान के लिए स्वयं अवधूत गीता के द्वारा चौबीस गुरुओं के विषय में ज्ञान कराया है। अवधूतगीता श्रीमद्भागवत-महापुराण के ग्यारहवें स्कन्द में वर्णित सातवाँ, आठवाँ तथा नववाँ अध्याय है, पृथ्वी से आरम्भ करके २४ गुरुओं का वर्णन इस गीता में प्राप्त होता है मन से वाणी से नेत्रों से तथा श्रोत्रेन्दियों से जो कुछ भी ग्रहणीय है, वह सब नश्वर है उसको तुम माया कृत या कल्पित समझो, जिसका मन विक्षिप्त अर्थात् अनेक वस्तुओं के प्रति भेद विषयक भ्रम हृदय में है वह भ्रम ही गुण व दोष बुद्धि का मूल है।

अवधूत शब्द का सम्प्रत्यय - अवधूत शब्द अव उपसर्ग पुर्वक, धू कम्पने धातु के साथ क्त प्रत्यय के योग से निर्मित है।[1] **"यो नित्यं ब्रह्मनिष्ठः स्यात् स एवावधूतः"** जो निरन्तर ब्रह्म भाव में स्थित रहता है, वस्तुत: वही अवधूत है।[2] अमरकोश में अवधूत शब्द को ब्रह्म वर्ग के ऋषियों, संन्यासियों के वर्ग में रखा गया है, जिसे पुरी तरह से झकझोर या प्रकम्पित कर दिया गया है वह अवधूत है।[3]

भगवान दत्तात्रेय का परिचय= जिन्हें आदि स्वरूप ब्रह्मा, मध्य स्वरूप विष्णु तथा अन्त स्वरूप शिव माना गया है, वह सृष्टि की रचना रूप में ब्रह्मा, स्थिति रूप में विष्णु तथा लीन समय में शिव स्वरूप हैं ऐसे मूर्तित्रय स्वरूप भगवान् दत्तात्रेय हैं। सदैव ब्रह्म-ज्ञान की स्थिति में रहने वाले अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान स्वरूप मुद्रा वाले, आकाश और भूतल को जिन्होंने अपने वस्त्र स्वरूप में धारण किया हुआ है और साक्षात् विज्ञान, प्रज्ञानघन स्वरूप हैं नारदपुराण में दत्तात्रेय भगवान् के विषय में ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।[4] दत्तात्रेय जी देवी अनुसूया व अत्रि ऋषि के पुत्र थे, उन्हें महान योगी, अवधूत तथा चिन्तक आदि नामों से जाना जाता है, नाथ सम्प्रदाय तथा दत्त सम्प्रदाय में इनका स्थान गुरु का है। प्रकृति के साथ-साथ सामान्य जीव जन्तुओं से इन्होनें महान परिवर्तन कर देने वाली शिक्षाओं को ग्रहण किया।

आत्मा व परमात्मा में अभेद

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव जी को अवगत कराते हैं कि इन्द्रियों को वश में करने से चित्त को वश में करना सुगम हो जाता है चित्त को वश में करने से उदार हृदय निर्मित होता है, जिससे साधक यह अनुभव कर सकता है कि यह संपूर्ण जगत् में की आत्मा में ही भरा हुआ है तथा आत्मा मुझ जो में सर्वात्मा इन्द्रिय अतीत हूँ, वह आत्मा एक ही है।[5]

प्रश्न होता है कि आत्मा तो परिच्छिन्न है उसमें विस्तृत जगत् का ईक्षण कैसे किया जाएगा?[6] उत्तर पक्ष में भगवान् कहते हैं कि मुझ ब्रह्म में ही इस जगत का संपूर्ण प्रपंच विस्तृत रूप से यदि आप देखोगे तो स्पष्ट हो सकेगा।[7]

उद्धव के संन्यास ज्ञान तथा पथप्रदर्शक के रूप में भगवान - उद्धव जी भगवान् की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आप ही योग के योगफल को प्राप्त करा देने वाले हैं, इस कारण से आप योगियों की विशेष संपत्ति हो, जिसका ज्ञान कतिपय साधकों को ही साधना से प्राप्त हो सकता है योग की उत्पत्ति भी आपसे ही है अतः आप अखण्ड-करुणा-वरूणालय स्वभाव स्वरूप हैं, जिस कारण महान सन्यासस्वरूप त्याग का उपदेश हमें प्राप्त होता है।[8] 'योगेश' से अभिप्राय योग के स्वामी इस अर्थ में अभिव्यक्त है तथा न्यास इस शब्द से योग की अत्यन्त गोपनीय निधिविशेष है।

संन्यास का तात्विक स्वरुप एवं मानसिक शुद्धता- संन्यास के विषय में **मुण्डकोपनिषद्** कहता है कि "जो यशस्वी साधक वेदान्त के ज्ञान को समग्र रूप से जान लिए हैं तथा जो विज्ञान के लक्ष्य से निश्चित रूप से अवगत हो गए हैं तथा सन्यास नामक योग के द्वारा जिनकी अन्तरङ्ग सत्ता संपूर्ण रूप से परिशुद्धि को प्राप्त कर चुकी है इस प्रकार के साधन ही अंततः मृत्यु से भी परे जाकर पर ब्रह्म को प्राप्त होकर के सर्वदा के लिए मुक्त स्वभाव हो जाते हैं, यहाँ सामान्य योग से अभिप्राय वाह्य वस्तुओं के त्याग मात्र से न होकर के भीतर विद्यमान आशक्तियों, अहंकार तथा कामनाओं के संपूर्ण निराकरण से है"।[9]

पद्य में 'ब्रह्मलोकेषु' सुख यह शब्द स्थान सूचक शब्द प्रतीकात्मक है, आचार्य शङ्कर इसे ब्रह्मस्वरूप की स्थिति मानते हैं अतः वह चेतन दशा जहाँ द्वैत समाप्त हो गया हो, अद्वैत वेदान्त में मोक्ष का अर्थ है- अविद्या का क्षय। तथा आत्म-तत्व की ब्रह्मरुपता की अनुभूति यह मन्त्र उस चरम मुक्ति की ओर सङ्केत करता है जो वेदान्त के तत्व ज्ञान से निश्चय पूर्वक मुक्त त्यागी, शुद्धचित्त और आत्मनिष्ठ संन्यासियों को प्राप्त होती है वह ब्रह्म को जानकर उसी में स्थित होकर देह के अंत में सर्वथा मुक्त हो जाते हैं यह स्थिति पुनर्जन्म तथा बंधनों से परे होकर परमामृत ब्रह्म स्वरूप में लय की स्थिति है।[10]

शरणागति का औचित्य एवं नारायण की अपरिच्छिन्नता- उद्धव भगवान् से उपदेश को सरल उपाय से अधिगम कराने हेतु प्रार्थना करते हैं कि अहं भाव तथा ममत्व बुद्धि के कारण मैं आपकी माया से निर्मित देह, गेह, पुत्र, धन आदि की सृष्टि में डूब रहा हूँ, प्रभु मैं अज्ञानी हूँ, मुझे उपदेश करें।[11] अतः इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर के लिए ही भगवान् ने सन्यास धर्म का मार्गदर्शन किया है। यह भी प्रश्न जिज्ञाषुओं के मध्य में विद्यमान रहता है कि सभी देवों को छोड़कर उद्धव भगवान् नारायण की शरण में ही क्यों जाते हैं?[12]

उद्धव का अनुभव यह है कि भगवान् देश तथा काल की सीमा से अपरिच्छिन्न हैं कुछ सेवित पुरुष दुःशील होते हैं, फल के समय पर विनष्ट हो जाते हैं किन्ही में ज्ञान का अभाव होता है, कुछ रक्षा कर सकने में असमर्थ होते हैं, कुछ अपने धर्म से च्युत् अर्थात् पतित हो जाते हैं[13], किन्तु भगवान् सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान होने तथा सभी कालादि के कारण होने से कभी कुंठित नहीं होते हैं।

नेति-नेति प्रक्रिया – किसी के अनुभव में वह परमेश्वर पीत वर्ण का है, कोई उसे श्वेत वर्ण का समझता है, कोई रक्त वर्ण का, कोई उसे श्वेत कमल जैसे, कोई विजली के प्रकाशवत् सर्वत्र फैलने वाला समझता है, अन्ततः उपनिषद् समाधान करता है, **"नेति नेति"** वह नाम, रूप और उपाधियों से उत्कृष्ट है, इससे उत्कृष्ट कोई आदेश नहीं है।[14] यद्यपि उद्धव भगवान् नारायण को छोडकर किन्हीं अन्य योगियों के पास जाकर अपनी जिज्ञाषाओं का समाधान प्राप्त कर सकते थे, किन्तु कालातीत, अच्युत, गुणातीत व सर्वज्ञ आदि विशेषणों से युक्त परमेश्वर ही उद्धव के प्रश्नों का निदान कर सकने में सक्षम हैं, यद्यपि वह चैतन्य इन सभी व्यवहारों से उत्कृष्ट है, कोई भी उपाधि उनका यथार्थ रुप प्रस्तुत कर सकने में असमर्थ है, अतएव शास्त्र **नेति-नेति** का आदेश प्रस्तुत करता है ।

अवधूत दत्तात्रेय के गुरु व उनसे प्राप्त होने वाली शिक्षाएँ - त्याज्य व संग्राह्य क्या है? इस प्रकार की शिक्षायें अवधूत ने इन २४ गुरुओं से प्राप्त की है।

पृथ्वी - जीवों द्वारा आक्रान्त होने पर कभी विचलित न होना ऐसा आदर्श पृथ्वी ने समाज में स्थापित किया है। साधक को अपमान तथा कष्ट में पृथ्वी की भाँति **तितिक्षा** का भाव ग्रहण करना चाहिए। अतः पृथ्वी से क्षमा की शिक्षा को दत्तात्रेय जी ने ग्रहण किया।[15]

प्राणवायु – प्राणवायु से अवधूत ने संतुष्टि प्राप्त करने की शिक्षा को पाया, जैसे प्राण आहार मात्र से तृप्त हो जाता है वैसे ही साधक को भी जितना प्राप्त हो जाए उसे प्रयाप्त समझकर सन्तुष्ट होना चाहिए।[16]

आकाश - आकाश को साधक आत्म-तत्व के समान समझे, जिस प्रकार व्यापक आकाश का घट आदि से सङ्ग नहीं होता है,उसी प्रकार आत्मा भी शरीर से परिच्छिन्न नहीं है।

जल - जल से साधक को अपने स्वभाव को स्वच्छ, मधुर तथा पवित्र व शुद्ध बनाने की शिक्षा को प्राप्त करना चाहिए, जिस प्रकार जल अपने दर्शन व स्पर्श मात्र से लोगों को पवित्र कर देता है ठिक उसी तरह साधक अपना व्यक्तित्व का निर्माण करें।[17]

अग्नि - जिस प्रकार लम्बी, चौडी, टेढी तथा सीधी लकडियों में रहकर भी अग्नि उन्ही के जैसे दिखाई देती है, उसी तरह आत्मा भी अपनी माया सञ्चित कार्य कारण रुप जगत् में व्याप्त होने के कारण उन वस्तुओं से सम्बन्ध न होने पर भी उनके रुप में प्रतीत होने लगता है। वस्तुतः वह वैसी नहीं है।[18]

चन्द्रमा - काल के प्रभाव के कारण चन्द्रमा की कलाएँ घटती- बढती दिखाई देती हैं वस्तुतः वह स्थिर कलाओं वाला है। वह न तो घटता है न बढता है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाली सब अवस्थाओं को शरीर कहा जाता है,आत्मा का उन अवस्थाओं से कोई

सम्बन्ध नहीं है इस प्रकार विकार रहित होकर, अनाशक्त भाव में रहने की शिक्षा को चन्द्रमा से ग्रहण करना चाहिए।[19]

सूर्य - जिस प्रकार व्यक्ति भिन्न-भिन्न जल पात्रों में भिन्न-भिन्न सूर्य को समझता है वस्तुतः सूर्य एक ही है, उसी प्रकार जो आत्मतत्व एक ही है वह भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग प्रतीत होता है। अत: आत्मा की भिन्नता की प्रतीति शरीर की उपाधियों के कारण दृष्टिगोचर होती है। जैसे जलपात्रों के भिन्नता से सूर्य अनेक प्रतीत होते हैं।[20]

कपोत - कपोत से अवधूत ने यह शिक्षा ग्रहण की है कि किसी से भी अत्यधिक स्नेह नहीं करना चाहिए, कपोत का दृष्टान्त ध्यान करके वह अवधूत अपना स्वातन्त्र्य खोकर के उस दीन कपोत के समान सन्तप्त हो जाता है।[21] वर्तमान समय में जहाँ व्यक्ति भावनात्मक निर्भरता जैसे विषयों से दु:खी है, कपोत की शिक्षा अवधूत इस मनोवैज्ञानिक संकट से वचने हेतु प्रस्तुत करते हैं।

अवधूत दत्तात्रेय के माध्यम से ये शिक्षाएँ भगवान श्रीहरि ने उद्धव के विवेक प्राप्ति को माध्यम बनाकर जनमानस के कल्याण के लिये करायी है।

अजगर - प्रारब्ध के कर्मों का फल अवश्य ही व्यक्ति को भोगना होता है, इसके लिये आयु को विताना व्यर्थ है, अतः साधक को चाहिए कि वह इन्द्रिय सुख की कामना न करे।[22]

समुद्र - साधक को सदैव गम्भीर तथा प्रसन्न रहना चाहिए। उसका भाव अपार होना चाहिए, जिस प्रकार सागर शान्त होता है उसी प्रकार साधक को होना चाहिए, जैसे मनि का भी आचरण होता है। समुद्र से अवधूत ने यह शिक्षा को प्राप्त किया।[23]

जिस प्रकार वर्षा के जल से समुद्र की शीमाएँ घटती व बढती नहीं हैं उसी प्रकार साधक को भी सांसारिक वस्तुओं के घटने व बडने से दुखी व प्रसन्न नहीं होना चाहिए।

अत:साधक को विषय के प्रति आसक्त न होकर भगवत् प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील होना चाहिए।

पतङ्गा, भ्रमर, हाथी, हिरण व मत्स्य - इन पाँचों गुरुओं से अवधूत दत्तात्रेय जी ने पाँचो ज्ञानेन्द्रियों से क्या शिक्षा प्राप्त की जा सकती है, यह ज्ञान प्राप्त किया, जिसमें प्रदीप के सुन्दर **रुप** को देखकर पतङ्गा, हथिनी के **स्पर्श** में मोहित हाथी का भयङ्कर गर्त में गिर जाना, व्याध की मनोरम वंशी को **सुनकर** मृग का उसके हाथों मरना, कमल पुष्प की **सुगन्धि** में मग्न भ्रमर सांयकाल कमल कोश में बन्ध होकर हाथी के द्वारा मारा जाना और मछली का मांस पर मोहित होकर जाल में फसना **रसनेन्द्रिय** पर नियन्त्रण न होना ही है। अत: एक इन्द्रिय के वश में न होने पर भी यदि जीव मृत्यु को प्राप्त हो जा रहा है तो जिनकी पाँचों इन्दियाँ विषय भोग व लोलुपता में क्रियाशील हैं उनका कल्याण कैसे संभव हो सकेगा। अत: अजितेन्द्रिय साधक विनष्ट हो जाता है यह शिक्षा अवधूत को प्राप्त हुई है।[24]

पिङ्गला (वेश्या) – जब अपने देह तथा धन की आशा से पिङ्गला नामक वैश्या को निराशा प्राप्त हुई, तब उनके भीतर वैराग्य जाग्रत हुआ। मानसिक स्वास्थ्य के लिए आशाओं का त्याग व्यवहारिक सूत्र है। दत्तात्रेय कहते हैं- " आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् । यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥"[25]

- **शोध की समस्या: -** संसार के द्वंद्वों (सुख-दुख, जन्म-मृत्यु) के बीच मानसिक शांति प्राप्त करने की चुनौती।

शोध के उद्देश्य - (Objectives of Research)

- अवधूत गीता में समायोजित मुख्य दार्शनिक तत्वों की पहचान करना।
- 'अवधूत' सम्प्रत्यय की आध्यात्मिक परिभाषा स्पष्ट करना।
- अवधूत गीता के उपदेश हृदयग्राही होने के साथ-साथ अत्यधिक मार्मिक भी है। यह गीता पाठकों को अनाशक्त भाव में स्थिर कराने वाले तत्वों को प्रस्तुत करती है।
- २४ गुरुओं से प्राप्त शिक्षा को आधार बनाकर प्रकृति की महत्तता को स्पष्ट करती है।
- प्रकृति के व्यावहारिक दर्शन को आत्मसात् करने का मार्ग भी पाठकों को अवगत कराती है, जो "**पर्यावरण संरक्षण**" हेतु पाठकों में जाग्रति का आधार बनेगा ।
- यह गीता छोटी-छोटी रोचक कथाओं के माध्यम से अवधूत गीता का सार प्रस्तुत करती है। जिससे साधक आसक्तियों से मुक्ति पाकर समदर्शी हो सकेंगे।
- यह गीता न केवल विद्वानों के लिए अपितु सम्पुर्ण लोक-संस्कृति के कल्याण के लिए लाभप्रद है जिसको राजा यदु ने सुनकर के मुक्ति को प्राप्त किया तथा वे समदर्शी हो गये ।

मुख्य दार्शनिक विश्लेषण –

अद्वैत की पराकाष्ठा: "तत्वमसि" के सिद्धान्त का विस्तार। ब्रह्म और आत्मा की पूर्ण एकता।

नेति-नेति प्रक्रिया: नाम, रूप और उपाधियों का निषेध।

साधना का स्वरूप - कर्मकाण्ड और कठिन तपस्या के बजाय **सहज अवस्था** पर बल।

भय और मोह का अन्त - मृत्यु के भय से मुक्ति और 'स्व' में स्थिति।

अवधूत गीता की प्रमुख अवधारणाएँ -

स्वयं का बोध: "मैं न पुरुष हूँ, न स्त्री, न नपुंसक।"

ज्ञान तथा अज्ञान: अज्ञान का अस्तित्व ही नहीं है, केवल बोध की कमी है।

गुरु तत्व: दत्तात्रेय के अनुसार प्रकृति के 24 गुरुओं से मिली सीख का दर्शन।

समदृष्टि भाव: मन, वाणी तथा नेत्र व श्रोत्र इन्द्रियों से जो भी ग्रहण हो रहा है उसे माया कृत् या कल्पित समझो ।[26]

आधुनिक जीवन में प्रासंगिकता (Contemporary Relevance)

- मानसिक स्वास्थ्य और तनाव प्रबन्धन में अद्वैत दृष्टि का प्रभाव।

- भेदभाव रहित समाज के निर्माण में **समरसता** का महत्त्व।
- २४ गुरुओं से प्राप्त शिक्षा को आधार बनाकर प्रकृति की महत्तता को स्पष्ट करती है, साथ ही प्रकृति के व्यावहारिक दर्शन को आत्मसात् करने का मार्ग भी पाठकों को अवगत कराती है।
- यह गीता छोटी-छोटी रोचक कथाओं के माध्यम से अवधूत गीता का सार प्रस्तुत करती है, जिससे साधक आसक्तियों से मुक्ति पाकर समदर्शी हो सकेंगे।

निष्कर्ष (Conclusion)

अवधूत गीता केवल एक दार्शनिक ग्रन्थ नहीं है, बल्कि यह चेतना की उच्चतम अवस्था का अनुभव है। यह व्यक्ति को सांसारिकता की अपेक्षा आन्तरिक पूर्णता की ओर अग्रसर करती है। यह भी सिद्ध करती है कि मुक्ति कहीं बाह्य वस्तुओं में नहीं, अपितु स्वयं के स्वरूप को जानने में है। और शास्त्रों की सार्थकता उन्हें अनुभव में परिवर्तित करने में है। अद्वैत बोध से अभिप्राय संसार का त्याग न होकर, संसार के प्रति **मिथ्यात्व** की दृष्टि व आत्म-तत्त्व के प्रति सत्य निष्ठा से है।

- यह गीता न केवल विद्वानों के लिए अपितु सम्पूर्ण लोक-संस्कृति के कल्याण के लिए लाभप्रद है, जिसको राजा यदु ने सुनकर के मुक्ति को प्राप्त किया तथा वे समदर्शी हो गये।
- यह गीता वर्तमान पर्यावरणीय संकट का समाधान प्रकृति के तत्त्वों (पृथ्वी,जल,वायु) को गुरु का स्थान देकर उनके प्रति श्रद्धा तथा संरक्षण का भाव जाग्रत करती है।
- समरसता युक्त समाज- अवधूत की दृष्टि जाति, लिङ्ग और वर्ण के मानव जनित भेदों का निषेध करके, ऐसे समाज की कल्पना करना है, जहाँ प्रत्येक जीव में उस परमेश्वर (चैतन्य) का साक्षात्कार हो सके। यह विचार समरसता और वैश्विक शान्ति हेतु सहायक सिद्ध होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography/References)

- अवधूत गीता (संस्कृत/हिंदी अनुवाद), गीता प्रेस, गोरखपुर।
- भारतीय दर्शन का इतिहास - डॉ. राधाकृष्णन।
- श्रीमद्भागवत महापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1997
- गीता-संग्रह, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2021
- ईशादि नौ उपनिषद् (शाङ्करभाष्यार्यसहित), गीताप्रेस, गोरख-पुर, 2011
- बृहदारण्यक उपनिषद् गीताप्रेस, गोरखपुर, 2011
- भारतीय दर्शन परिभाषा कोश, दीनानाथ शुक्ला, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1993
- स्वामी विवेकानंद, पूर्ण अद्वैत दर्शन पर व्याख्यान।
- शब्दकल्पद्रुम
- अमरकोष

सन्दर्भ

1. शब्दकल्पद्रुम।
2. महानिर्वाण तन्त्र।
3. "अवधूतः प्रकम्पितः अमरकोष।
4. ब्रह्मज्ञानमयी मुद्रा वस्त्रे चाकाश भूतले, प्रज्ञानघनबोधाय दत्तात्रेयाय नमोस्तुते।आद्यौ ब्रह्मा मध्ये विष्णुरन्ते देवः सदाशिवः,मूर्तित्रयस्वरुपाय दत्तात्रेयाय नमोस्तुते॥ *नारदपुराणे नारदविरचिते दत्तात्रेयस्तोत्रे श्लोकः ०६*
5. तस्माद्युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत्। आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे॥ अवधूतगीता९॥
6. कथमात्मनि परिच्छिन्ने विततं जगदीक्षणीयम्। अवधूतगीता भावार्थ प्रकाशिका ०९
7. तत्राह-आत्मानमिति। मयि ब्रह्मणि तद्रूपेणेक्षस्व।। अवधूतगीता भाव प्रकाशिका ०९
8. योगेश योगविन्यास योगात्मन्योगसंभव। निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः॥ अवधूतगीता १४
9. वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः। ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे॥ मुण्डकोपनिषद् ३.२.६
10. Sprituality thoughts by CB pathak
11. सोऽहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढः त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबन्धे। त्वञ्जसा निगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन्ननुशाधि भृत्यम्॥ अवधूतगीता १६
12. भा स्वदृशः स्वप्रकाशस्य सत्यस्यात्मन आत्मनो मां प्रति वक्तारं ते त्वत्तोऽन्यं नानुचक्षे न पश्यामि। अवधूतगीता १७
13. केचिद्दुःशीला भवन्ति केचित्सेविताः फलकाले विनश्यन्ति केचिदजाः केचिद्रक्षणेऽसमर्थाः केचित्तु स्थानादभ्रष्टाः:- भावार्थ दीपिका 18
14. तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपम्। यथा माहारजनं वासो यथा पाण्ड्वाविकं यथेन्द्रगोपो यथाग्न्यर्चिर्यथा पुण्डरीकं यथा सकृद्विद्युत्तः सकृद्विद्युत्तेव ह वा अस्य श्रीर्भवति य एवं वेदाथात आदेशो नेति नेति न ह्येतस्मादिति नेत्यन्यत्परमस्त्यथ नामधेयः सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्॥ बृहदारण्यकोपनिषद् २/३/६
15. भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः। तद्विद्वात्र चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम्॥ अवधूतगीता ३७
16. अवधूत गीता ३९
17. स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम्। मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः॥अवधूत गीता ४४
18. स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः। प्रविष्ट ईयते तत्तत्सरुपोऽग्निरिवैधसि॥अवधूत गीता ४७
19. विसर्गाद्याः श्मशानान्ता भावा देहस्य नात्मनः। कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना॥अवधूत गीता ४८
20. बुध्यते स्वे न भेदेन व्यक्तिस्थ इव तङ्गतः। लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत्॥ अवधूत गीता ११/०७/५१
21. नातिस्नेहः प्रसङ्गो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित्। कुर्वन्विन्देत संतापं कपोत इव दीनधीः॥अवधूत गीता ११/०७/५२
22. सुखमैन्द्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च। देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः॥ अवधूत गीता ११/०८/०१
23. मुनिः प्रसन्नगम्भीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः। अनन्तपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोदइवार्णवः॥अवधूत गीता ११/०८/५
24. पतङ्गमातङ्गकुरङ्ग भृङ्ग मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च। एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥ भाव प्रकाशिका टीका ११/८/६
25. अवधूत गीता , भागवत महापुराण ११/८/४४
26. यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः। नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम्॥ अवधूत गीता ७